7

राजस्थानी शैली की लघु चित्रकला

भारत में लघु चित्रकारी की कला का प्रारम्भ मुगलों द्वारा किया गया जो इस भव्य अलौकिक कला को फ़राज (पार्शिया) से लेकर आए थे। छठी शताब्दी में मुगल शासक हुमायुं ने फराज से कलाकारों को बुलवाया जिन्हें लघु चित्रकारी में विशेषज्ञता प्राप्त थी। उनके उत्तराधिकारी मुगल बादशाह अकबर ने इस भव्य कला को बढ़ावा देने के प्रयोजन से उनके लिए एक शिल्पशाला बनवाई। इन कलाकारों ने अपनी ओर से भारतीय कलाकारों को इस कला का प्रशिक्षण दिया जिन्होंने मुगलों के राजसी और रोमांचक जीवन-शैली से प्रभावित होकर एक नई विशेष तरह की शैली में चित्र तैयार किए। भारतीय कलाकारों द्वारा अपने इस खास शैली में तैयार किए गए विशेष लघु चित्रों को राजपूत अथवा राजस्थानी लघु चित्र कहा जाता है। इस काल में चित्रकला के कई स्कूल शुरू किए गए, जैसे कि मेवाड (उदयपुर), बंदी, कोटा, मारवाड़ (जोधपुर), बीकानेर, जयपुर और किशनगढ़।

यह चित्रकारी बड़ी सावधानी से की जाती है और हर पहलू को बड़ी बारीकी से चित्रित किया जाता है। मोटी-मोटी रेखाओं से बनाए गए चित्रों को बड़े सुनियोजित ढंग से गहरे रंगों से सजाया जाता है। ये लघु चित्रकार अपने चित्रकारों के लिए कागज़, आइवरी पेन लो, लकड़ी की तख्तियों (पट्टियों) चमड़े, संगमरमर, कपड़े और दीवारों का प्रयोग करते हैं। अपनी यूरोपीय प्रतिपक्षी कलाकारों के

विपरीत भारतीय कलाकार अपनी चित्रकारों में अनेक परिदृश्यों को शामिल किया है। इसके प्रयोग किए जाने वाले रंग खनिज़ों एवं सब्जियों, कीमती पत्थरों तथा विशुद्ध चांदी एवं सोने से बनाए जाते हैं। रंगों को तैयार करना और उनका मिश्रण करना एक बड़ी लंबी प्रक्रिया है। इसमें कई सप्ताह लग जाते हैं और कई बार तो सही परिणाम प्राप्त करने के लिए महीने भी लग जाते हैं। इसके लिए बहुत बढिया किस्म के ब्रुशों की जरूरत पड़ती है और बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए तो ब्रुश आज की तारीख में भी, गिलहरी के बालों से बनाए जाते हैं। परम्परागत रूप से ये चित्र कला का एक बहुत शानदार, व्यक्तिपरक और भव्य रूप हैं, जिनमें राजदरबार के दृश्य और राजाओं की शिकार की खोज के दृश्यों का चित्रण किया जाता है। इन चित्रों में फूलों और जानवरों की आकृतियों को भी बार-बार चित्रित किया जाता है।

राजस्थान का किशनगढ़ प्रान्त अपनी बनी ठनी चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध है। यह बिल्कुल भिन्न शैली है जिसमें बहुत बड़ी-बड़ी आकृतियां को चित्रित किया जाता है जैसे कि गर्दन, बादाम के आकार की आंखें और लम्बी-लम्बी अंगुलियां। चित्रकारी की इस शैली में बने चित्रों में अपने प्रिय देवता के रूप में अनिवार्य रूप से राधा और कृष्ण और उनके संगीतमय प्रेम को दर्शाया जाता है। अठारहवीं शताब्दी में राजा सावंत सिंह के शासनकाल के दौरान इस कला ने ऊंचाइयों को छुआ, जिन्हें बनी ठनी नाम की एक दासी से प्रेम हो गया था और इन्होंने अपने कलाकारों को आदेश दिया कि वे कृष्ण और राधा के प्रतीक के रूप में उनका और उनकी प्रेमिका का चित्र बनाएं। बनी ठनी चित्रकारों के अन्य विषय हैं–प्रतिकृतियां,

राजदरबार के दृश्य, नृत्य, शिकार, संगीत, सभाएं, नौका विहार (प्रेमी-प्रेमिकाओं का नौका विहार), कृष्ण लीला, भागवत पुराण और अन्य कई त्योहार जैसे कि होली, दीवाली, दुर्गा पूजा, और दशहरा।

आज भी बहुत से कलाकार रेशम, हाथीदंत, सूती कपड़े और कागज पर लघु चित्रकारी करते आ रहे हैं। लेकिन समय के साथ-साथ प्राकृतिक रंगों की जगह अब पोस्टर रंगों का प्रयोग होने लगा है। लघु चित्रकला स्कूलों का भी व्यापारीकरण हो गया है और कलाकार अधिकांशतः प्राचीन कलाकारों के बनाए चित्रों की पुनरावृत्ति ही कर रहे हैं।

राजस्थानी चित्रकला का आरम्भ

राजस्थानी चित्रकला अपनी प्राचीनता के लिए जाना जाता है। अनेक प्राचीन साक्ष्य निःसदेह इसके वैभवशाली आस्तित्व की पुष्टि करते हैं। जब राजस्थान की चित्रकला अपने प्रारंभिक दौर से गुजर रही थी तब अजन्ता परंम्परा भारत की चित्रकारी में एक नवजीवन का संचार कर रही थी। अरब आक्रमणों के झपेटों से बचने के लिए अनेक कलाकार गुजरात, लाट आदि प्रान्तों को छोड़कर देश के अन्य भागों में बसने लगे थे। जो चित्रकार इधर आये थे उन्होंने अजन्ता परम्परा की शैली को स्थानीय शौलियों में स्वाभाविकता के साथ समन्वित किया। उनके तत्वावधान में अनेक चित्रपट तथा चित्रित ग्रंथ बनने लगे जिनमें निशीथचूर्णि, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, नेमिनाथचरित, कथासरित्सागर, उत्तराध्ययन सुत्र, कल्पसूत्र तथा कालककथा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अजन्ता परम्परा के गुजराती चित्रकार सर्वप्रथम मेवाड़ तथा मारवाड़ में पहुँचे। इस समन्वय से चित्रकारी की मौलिक विधि में एक नवीनता का संचार हुआ जिसे मडोर द्वार के गोवर्धन-धारण तथा बाडौली तथा नागदा गाँव की मूर्तिकला में सहज ही देखा जा सकता है। राजस्थान की समन्वित शैली के तत्वावधान में अनेक जैन-ग्रंथ चित्रित किये गये। शुरूआती अवधारणा थी कि इन्हें जैन साधुओं ने ही चित्रित किया है अतः इसे 'जैन शैली' कहा जाने लगा लेकिन बाद में पता चला कि इन ग्रंथों को जैनेत्तर चित्रकारों ने भी तैयार किया है तथा कुछ अन्य धार्मिक ग्रंथ जैसे बालगोपालस्तुति, दुर्गासप्तशती, गीतगोविंद आदि भी इसी शैली में चित्रित किये गये हैं तो जैन शैली के नाम की सभी चीनता में सन्देह व्यक्त किया गया। जब प्रथम बार अनेक ऐसे जैन ग्रंथ गुजरात से प्राप्त हुए तब इसे 'गुजरात शैली' कहा जाने लगा। लेकिन शीघ्र ही गुजरात के अलावा पश्चिम भारत के अन्य हिस्सों में दिखे तब इसे

पश्चिम भारतीय शैली नाम दिया गया। बाद में इसी शैली के चित्र मालवा, गढ़मांडू, जौनपुर, नेपाल आदि अपश्चिमीय भागों में प्रचुरता से मिलने लगे तब इसके नाम को पुनः बदलने की आवश्यकता महसूस की गई। उस समय का साहित्य को अपभ्रंश साहित्य कहा जाता है। चित्रकला भी उस काल और स्वरूप से अपभ्रंश साहित्य से मेल खाती दिखाई देती है अतः इस शैली को 'अपभ्रंश शैली' कहा जाने लगा तथा शैली की व्यापकता की मर्यादा की रक्षा हो सकी। इस शैली को लोग चाहे जिस नाम से पुकारे इस बात में कोई संदेह नहीं कि इस शैली के चित्रों में गुजरात तथा राजस्थान में कोई भेद नहीं था। वागड़ तथा छप्पन के भाग में गुजरात से आये कलाकार "सोमपुरा" कहलाते है। महाराणा कुम्भा के समय का शिल्पी मंडन गुजरात से ही आकर यहाँ बसा था। उसका नाम आज भी राजस्थानी कला में एक सम्मानित स्थान रखता है। इस शैली का समय 11 वीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक माना जाता है। इसी का विकसित रूप वर्त्तमान का राजस्थानी चित्रकारी माना जाता है।

चूकि इसका प्रादुर्भाव अपभ्रंश शैली से हुआ है अतः इनके विषयों में कोई खास अन्तर नहीं पाया जाता पर विधान तथा आलेखन सम्बंधी कुछ बातों में अन्तर है। प्रारंभिक राजस्थानी शैली के रूप में अपभ्रंश शैली की सवाचश्म आँख एक चश्म हो गई तथा आकृति अंकन की रुढ़िबद्धता से स्वतंत्र होकर कलाकार ने एक नई सांस्कृतिक क्रान्ति को जन्म दिया। चित्र इकहरे कागज के स्थान पर बसली (कई कागजों को चिपका कर बनाई गई तह) पर अंकित होने लगे। अपभ्रंश के लाल, पीले तथा नीले रंगों के साथ-साथ अन्य रंगों का भी समावेश हुआ। विषय-वस्तु में विविधता आ गई। सामाजिक जीवन को चित्रित किया जाने लगा लेकिन उसकी मौलिकता को अक्षुण्ण रखने की कोशिश की गई। दूसरे शब्दों में राजस्थानी शैली अपभ्रंश शैली का ही एक नवीन रूप है जो 9 वी.-10 वीं. शती से कुछ विशेष कारणवश अवनति की ओर चली गई थी।

प्रारंभिक राजस्थानी चित्रों की उत्कृष्टता 1540 ई. के आसपास चित्रित ग्रंथों जिस में मृगावती, लौरचन्दा, चौरपंचाशिका तथा गीतगोविन्द प्रमुख हैं, पृष्ठों पर अंकित हैं। इसके अलावा रागमाला तथा भागवत के पृष्ठ इसकी उत्कृष्टता के परिचायक हैं। मालवा के रसिकप्रिया (1634 ई.) से राजस्थानी चित्रकारी में राजसी प्रमाणों का शुरूआत हुआ।

इन चित्रों के सौदर्य से मुगल भी प्रभावित हुए। बादशाह अकबर ने कई हिन्दु चित्रकारों को अपने शाही दरबारियों के समुह में सम्मिलित किया राजपुतों

से वैवाहित सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण दोनों के चित्र शैलियों में परस्पर आदान-प्रदान हुआ। राजस्थानी कलाकारों ने मुगल चित्रों से त्वचा का गुलाबी रंग ग्रहण किया जो किशनगढ़ शैली में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

दूसरी तरफ मुगलों ने राजस्थानी शैली की भाँति वास्तु का अपने चित्रों में प्रयोग किया। इसके अलावा चित्र भूमि में गहराई दर्शाकर नवीन पृष्ठ भूमि तैयार कर चित्रों को सुचारु रूप से संयोजित किया। 16 वी. से 18 वी. व 19 वी. शती तक कला की एक अनुपम धारा सूक्ष्म मिनियेचर रूप में कागज पर अंकित होती रही। इसके अतिरिक्त भित्ति-चित्रण परम्परा को भी राजस्थानी कलाकारों ने नव-जीवन दिया।

हाल के वर्षों में राजस्थानी शब्द का इस्तेमाल विस्तृत परिपेक्ष में होने लगा है। कुछ विद्वानों के मतानुसार राजस्थानी चित्रकला की सीमारेखा राजस्थान तक ही सीमित न रहकर मालवा तथा मध्य भारत तक फैला हुआ है।

विशेषताएँ

राजस्थानी चित्रकला अपनी कुछ खास विशेषताओं की वज़ह से जानी जाती है–

प्राचीनता

प्राचीनकाल के भग्नावशेषों तथा तक्षणकला, मुद्रा कला तथा मूर्तिकला के कुछ एक नमूनों द्वारा यह स्पष्ट है कि राजस्थान में प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से ही चित्रकला का एक सम्पन्न रूप रहा है। वि. से. पूर्व के कुछ राजस्थानी सिक्कों पर अंकित मनुष्य, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, धनुष, बाण, स्तूप, बोधिद्रम, स्वास्तिक, ब्रज पर्वत, नदी आदि प्रतीकों से यहाँ की चित्रकला की प्राचीनता स्पष्ट होती है। वीर संवत् 84 का बाड़ली-शिलालेख तथा वि. सं. पूर्व तीसरी शताब्दी के माध्यमिक नगरी के दो शिलालेखों से भी संकेतित है कि राजस्थान में बहुत पहले से ही चित्रकला का समृद्ध रूप रहा है। बैराट, रंगमहल तथा आहड़ से प्राप्त सामग्री पर वृक्षावली, रेखावली तथा रेखाओं का अंकन इसके वैभवशाली चित्रकला के अन्य साक्ष्य है।

कलात्मकता

राजस्थान भारतीय इतिहास के राजनीतिक उथल-पुथल से बहुत समय तक बचा रहा है अतः यह अपनी प्राचीनता, कलात्मकता तथा मौलिकता को बहुत हद

तक संजोए रखने में दूसरे जगहों के अपेक्षाकृत ज्यादा सफल रहा है। इसके अलावा यहाँ का शासक वर्ग भी सदैव से कला प्रेमी रहा है। उन्होने राजस्थान को वीरभूमि तथा युद्ध भूमि के अतिरिक्त 'कथा की सरसता से आप्लावित भूमि' होने का सौभाग्य भी प्रदान किया। इसकी कलात्मकता में अजन्ता शैली का प्रभाव दिखता है जो निःसंदेह प्राचीन तथा व्यापक है। बाद में मुगल शैली का प्रभाव पड़ने से इसे नये रूप में भी स्वीकृती मिल गई।

रंगात्मकता

चटकीले रंगो का प्रयोग राजस्थानी चित्रकला की अपनी विशेषता है। ज्यादातर लाल तथा पीले रंगों का प्रचलन है। ऐसे रंगो का प्रयोग यहाँ के चित्रकथा को एक नया स्वरूप देते है, नई सुन्दरता प्रदान करते है।

विविधता

राजस्थान में चित्रकला की विभिन्न शैलियाँ अपना अलग पहचान बनाती है। सभी शैलियों की कुछ अपनी विशेषताएँ है जो इन्हे दूसरों से अलग करती है। स्थानीय भिन्नताएँ, विविध जीवन शैली तथा अलग अलग भौगोलिक परिस्थितियाँ इन शैलियों को एक-दूसरे से अलग करती है। लेकिन फिर भी इनमें एक तरह का समन्वय भी देखने को मिलता है।

विषय-वस्तु

इस दृष्टिकोण से राजस्थानी चित्रकला को विशुद्ध रूप से भारतीय चित्रकला कहा जा सकता है। यह भारतीय जन-जीवन के विभिन्न रंगो की वर्षा करता है। विषय-वस्तु की विविधता ने यहाँ की चित्रकला शैलियों को एक उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान किया। चित्रकारी के विषय-वस्तु में समय के साथ ही एक क्रमिक परिवर्त्तन देखने को मिलता है। शुरू के विषयों में नायक-नायिका तथा श्रीकृष्ण के चरित्र-चित्रण की प्रधानता रही लेकिन बाद में यह कला धार्मिक चित्रों के अंकन से उठकर विविध भावों को प्रस्फुटित करती हुई सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने लगी। यहाँ के चित्रों में आर्थिक समृद्धि की चमक के साथ-साथ दोनों की कला है। शिकार के चित्र, हाथियों का युद्ध, नर्तकियों का अंकन, राजसी व्यक्तियों के छवि चित्र, पतंग उड़ाती, कबूतर उड़ाती तथा शिकार करती हुई स्त्रियाँ, होली, पनघट व प्याऊ के दृश्यों के चित्रण में यहाँ के कलाकारों ने पूर्ण सफलता के साथ जीवन के उत्साह तथा उल्लास को दर्शाया है।

बारहमासा के चित्रों में विभिन्न महीनों के आधार पर प्रकृति के बदलते स्वरूप को अंकित कर, सूर्योदय के राक्तिमवर्ण राग भैरव के साथ वीणा लिए नारी हरिण सहित दर्शाकर तथा संगीत का आलम्बन लेकर मेघों का स्वरूप बताकर कलाकार ने अपने संगीत-प्रेम तथा प्रकृति-प्रेम का मानव-रूपों के साथ परिचय दिया है। इन चित्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कथा, साहित्य व संगीत में कोई भिन्न अभिव्यक्ति नहीं है। प्रकृति की गंध, पुरुषों का वीरत्व तथा वहाँ के रंगीन उल्लासपूर्ण संस्कृति अनूठे ढंग से अंकित है।

स्त्री -सुन्दरता

राजस्थानी चित्रकला में भारतीय नारी को अति सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। कमल की तरह बड़ी-बड़ी आँखे, लहराते हुए बाल, पारदशी कपड़ों से झाक रहे बड़े-बड़े स्तन, पतली कमर, लम्बी तथा घुमावदार ऊँगलियाँ आदि स्त्री-सुन्दरता को प्रमुखता से इंगित करते है। इन चित्रों से स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न उपलब्ध सोने तथा चाँदी के आभूषण सुन्दरता को चार चाँद लगा देते हैं। आभूषणों के अलावा उनकी विभिन्न भंगिमाएँ, कार्य-कलाप तथा क्षेत्र विशेष के पहनावे चित्रकला में एक वास्तविकता का आभास देते हैं।

राजस्थानी चित्रशैली

राजस्थान में लोक चित्रकला की समृद्धशाली परम्परा रही है। मुगल काल के अंतिम दिनों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक राजपूत राज्यों की उत्पत्ति हो गई, जिनमें मेवाड़, बूंदी, मालवा आदि मुख्य हैं। इन राज्यों में विशिष्ट प्रकार की चित्रकला शैली का विकास हुआ। इन विभिन्न शैलियों में की विशेषताओं के कारण उन्हें राजपूत शैली का नाम प्रदान किया गया।

राजस्थानी चित्रशैली का पहला वैज्ञानिक विभाजन आनन्द कुमार स्वामी ने किया था। उन्होंने 1916 में 'राजपूत पेन्टिंग' नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने राजपूत पेन्टिंग में पहाड़ी चित्रशैली को भी शामिल किया। परन्तु अब व्यवहार में राजपूत शैली के अन्तर्गत केवल राजस्थान की चित्रकला को ही स्वीकार करते हैं। वस्तुतः राजस्थानी चित्रकला से तात्पर्य उस चित्रकला से है, जो इस प्रान्त की धरोहर है और पूर्व में राजपुताना में प्रचलित थी।

विभिन्न शैलियों एवं उपशैलियों में परिपोषित राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही भारतीय चित्रकला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अन्य शैलियों से प्रभावित होने के उपरान्त भी राजस्थानी चित्रकला की मौलिक अस्मिता है–

1. मालवा

मालवा शैली में निष्पादित की गई कुछ महत्वपूर्ण चित्रकलाएं हैं–1634 ईसवी सन् की रसिकप्रिया की एक शृंखला, 1652 ईसवी सन् में नसरतगढ़ नायक एक स्थान पर चित्रित की गई, अमः शतक की एक शृंखला और 1680 ईसवी सन् में माधो दास नामक एक कलाकार द्वारा नरसिंह शाह में चित्रित की गई रागमाला की एक शृंखला। इनमें से कुछ राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में उपलब्ध हैं। इसी समय की एक अन्य अमरू-शतक प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई में और 1650 ईसवी सन् की एक रागमाला शृंखला भारत कला भवन, बनारस में उपलब्ध है। मालवा में चित्रकला सत्रहवीं शताब्दी ईसवी सन् के अन्त तक जारी रही।

1680 ईसवी सन् की रागमाला की एक शृंखला का उदाहरण मेघ राग का निरूपण करता है। इस लघु चित्रकला में नीले वर्ण वाले राग को तीन महिला संगीतकारों द्वारा बजाए जा रहे संगीत की थाप पर एक महिला को नृत्य करते हुए दिखाया गया है। इस दृश्य की पृष्ठभूमि श्याम है, आकाश काले बादलों से घिरा हुआ है और बिजली चमक रही है तथा वर्षा को श्वेत बिन्दु रेखाओं द्वारा दिखाया गया है। बादलों की श्याम पृष्ठभूमि में चार हंस पंक्तिबद्ध होकर उड़ रहे हैं, जिससे लघु चित्रकला के चित्रीय प्रभाव में वृद्धि होती है। आलेख सबसे ऊपर नागरी में लिखा गया है। इस चित्रकला की प्रतीकात्मक विशेषताएं हैं–विषम वर्णों का प्रयोग, मुगल चित्रकला के प्रभाव के कारण आरेखण का परिष्करण और काले फुंदनों तथा धारीदार लहंगों सहित आभूषण एवं परिधान।

2. मेवाड़

मेवाड़ चित्रकला का प्रारम्भिक उदाहरण 1605 ईसवीं सन् में मिसदी द्वारा उदयपुर के निकट एक छोटे से स्थान चावंद में चित्रित की गई रागमाला की एक शृंखला है। इस शृंखला की अधिकांश चित्रकलाएं श्री गोपी कृष्ण कनोड़िया के संग्रह में हैं। रंगमाला की एक अन्य शृंखला को साहिलदीन ने 1628 ईसवीं सन् में चित्रित किया था। इस शृंखला की कुछ चित्रकलाएं जो पहले खंजाची संग्रह के पास थी जो अब राष्टीय संग्रहालय, नई दिल्ली में हैं। मेवाड़ चित्रकला के अन्य उदाहरण हैं–1651 ईसवी सन् की रामायण की तृतीय पुस्तक (अरण्य काण्ड) का सचित्र उदाहरण जो सरस्वती भण्डार, उदयपुर में हैं, 1653 ईसवी सन् की रामायण की सातवीं पुस्तक (उत्तघ्र काण्ड) जो ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में है और लगभग इसी समय की रागमाला चित्रकला की एक शृंखला राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है।

1628 ईसवी सन् में साहिबदीन द्वारा चित्रित की गई रागमाला शृंखला का एक उदाहरण अब राष्ट्रीय संग्रहालय में है जो ललित रागिनी को दर्शानेवाली एक चित्रकला है। नायिका एक ऐसे मण्डप के नीचे एक बिस्तर पर लेटी हुई है तथा उसकी आंखें बन्द हैं जिसमें एक द्वार भी है। एक दासी उसके चरण दबा रही है। नायक बाहर खड़ा है, उसके हाथ में एक पुष्पमाला है। अग्रभाग में एक सज्जित अश्व है और दूल्हा मण्डप की सीढियों के निकट बैठा हुआ है। आरेखण मोटा है और वर्ण चमकीले तथा विषम हैं। चित्रकला का आलेख पीत भूमि पर सबसे ऊपर श्याम रंग से लिखा गया है।

3. बूँदी

चित्रकला की बूँदी शैली मेवाड़ के अति निकट है लेकिन बूँदी शैली गुणवत्ता में मेवाड़ शैली से आगे है। बूँदी में चित्रकला लगभग 1625 ईसवीं सन् में प्रारम्भ हो गई थी। भैरवी रागिनी को दर्शाते हुए एक चित्रकला इलाहाबाद संग्रहालय में हैं जो बूँदी चित्रकला का एक प्रारंभिक उदाहरण है। इसके कुछ उदाहरण हैं–कोटा संग्रहालय में भागवत पुराण की एक सचित्र पाण्डुलिपि और राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में रसिकप्रिया की एक शृंखला।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में रसिकप्रिया की एक शृंखला में एक दृश्य है जिसमें कृष्ण एक गोपी से मक्खन लेने का प्रयास कर रहा है लेकिन जब उसे यह पता चलता है कि पात्र में एक वस्त्र का टुकड़ा और कुछ अन्य वस्तुएं हैं लेकिन मक्खन नहीं है तो वह यह समझ जाता है कि गोपी ने उससे छल किया है। पृष्ठभूमि में वृक्ष और अग्रभाग में एक नदी है जिसे तरंगी रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है, नदी में फूल और जलीय पक्षी दिखाई दे रहे हैं। इस चित्रकला का चमकीले लाल रंग का एक किनारा है, जैसा कि इस लघु चित्रकला से स्पष्ट होता है बूँदी चित्रकला के विशेष गुण भड़कीले तथा चमकीले वर्ण, सुनहरे रंग में उगता हुआ सूरज, किरमिजी-लाल रंग का क्षितिज, घने और अर्द्ध-प्रकृतिवादी वृक्ष हैं। चेहरों के परिष्कृत आरेखण में मुगल प्रमाण और वृक्षों की अभिक्रिया में प्रकृतिवाद का एक तत्व दृष्टिगोचर है। आलेख पीत भूमि पर सबसे ऊपर श्याम रंग से लिखा गया है।

4. कोटा

बूँदी शैली से काफी कुछ सदृश्य चित्रकला की एक शैली अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान बूँदी के निकट एक स्थान कोटा में भी

प्रचलित थी। बाघ और भालू के आखेट के विषय कोटा में अति लोकप्रिय थे। कोटा की चित्रकलाओं में अधिकांश स्थान पर्वतीय जंगल ने ले लिया है जिसे असाधारण आकर्षण के साथ प्रस्तुत किया गया है।

5. आमेर-जयपुर

आमेर राज्य के मुगल सम्राटों से घनिष्ठतम संबंध थे। सामान्यतः यह माना जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आमेर राज्य की पुरानी राजधानी आमेर में चित्रकला के एक विद्यालय की स्थापना हुई। बाद में अठारहवीं शताब्दी में कलात्मक क्रियाकलाप का केन्द्र नई राजधानी जयपुर चला गया था। जयपुर के शासकों की काफी बड़ी संख्या में प्रतिकृतियां और अन्य विषयों पर लघु चित्रकलाएं हैं जिनका श्रेय निश्चित रूप से जयपुर शैली को जाता है।

6. मारवाड़

मारवाड़ में चित्रकला के प्रारम्भिक उदाहरणों में से एक 1623 ईसवी सन् में वीरजी नाम के एक कलाकार द्वारा मारवाड़ में पाली में चित्रित की गई रागमाला की एक शृंखला है जो कुमार संग्राम सिंह के संग्रह में है। लघु चित्रकलाओं को एक आदिम तथा ओजस्वी लोक शैली में निष्पादित किया जाता है तथा ये मुगल शैली से कदापि प्रभावित नहीं हैं।

प्रतिकृतियों, राजदरबार के दृश्यों , रंगमाला की शृंखला और बड़ामास, आदि को शामिल करते हुए बड़ी संख्या में लघु चित्रकलाओं को सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक मारवाड़ में पाली, जोधपुर और नागौर आदि जैसे चित्रकला के अनेक केन्द्रों पर निष्पादित किया गया था।

7. बीकानेर

बीकानेर उन राज्यों में से एक था जिनके मुगलों के साथ घनिष्ठ संबंध थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ मुगल कलाकारों को बीकानेर के राजदरबार ने संरक्षण प्रदान किया था और ये चित्रकला की एक ऐसी नई शैली को प्रारम्भ करने के प्रति उत्तरदायी थे जिसकी मुगल और दक्कनी शैलियों से काफी समानता थी। लगभग 1650 ईसवी सन् में बीकानेर के राजा कर्ण सिंह ने एक महत्वपूर्ण कलाकार अली रज़ा 'दिल्ली के उस्ताद' को नियोजित किया था। बीकानेर के राजदरबार में कार्य करने वाले कुछ अन्य असाधारण कलाकार रुकनुद्दीन और उनका सुपुत्र शाहदीन थे।

8. किशनगढ़

अठारहवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश के दौरान, राजा सावंत सिंह (1748-1757 ईसवी सन्) के संरक्षणाधीन किशनगढ़ में राजस्थान की एक सर्वाधिक आकर्षक शैली का विकास हुआ था। राजा सावंत सिंह ने नागरी दास के कल्पित नाम से कृष्ण की प्रशंसा में भक्तिपूर्ण काव्य लिखा था। दुर्भाग्यवश, किशनगढ़ की लघु-चित्रकलाएं बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। ऐसा माना जाता है कि इनमें से अधिकांश की रचना उस्ताद चित्रकार निहाल चन्द ने की थी जो अपनी कला-कृतियों में अपने उस्ताद की गीतात्मक रचनाओं की दृश्य प्रतिभाओं का सृजन करने में सक्षम रहे हैं। कलाकार ने छरहरे शरीरों और सुंदर नेत्रों के साथ मानव आकृतियों को नज़ाकत से चित्रित किया है। राष्ट्रीय संग्रहालय के संग्रह में किशनगढ़ विद्यालय की एक सुन्दर लघु चित्रकला को यहां सचित्र प्रस्तुत किया गया है। यह संध्या में कृष्ण के अपने गोपिकाओं और गायों के साथ गोकुल लौटने के सुन्दर ग्रामीण दृश्य को चित्रित करती है। इस चित्रकला की विशेषता में उत्कृष्ट आरेखण, मानव आकृतियों और गायों का सुन्दर प्रतिरूपण और एक झरने, सघन वृक्षों की कतारों और वास्तुकला को दर्शाते हुए भूदृश्यांकन का एक विशाल परिदृश्य शामिल हैं। कलाकार ने कई आकृतियों को लघु चित्रकला में उत्कृष्ट कुशलता का प्रदर्शन किया है। इस चित्रकला का आन्तरिक किनारा सुनहरा है। इसे अठारहवीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है तथा यह किशनगढ़ के प्रसिद्ध कलाकार निहाल चन्द की एक कलाकृति हो सकती है।